पाठ्यक्रम - १९

१९ अ श्रमणों की चमत्कारिक शक्ति- चौसठ ऋद्धियाँ

ऋद्धि- तपश्चरण के प्रभाव से योगीजनों को चमत्कारिक शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं, उन्हें ऋद्धियाँ कहते हैं। मुख्य रूप से ऋद्धियाँ आठ होती हैं। उनके उत्तर भेद चौसठ होते हैं। ऋद्धियों के कार्य व शक्ति इस प्रकार हैं-

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य

लोक षट् द्रव्यात्मक है। 'सत् द्रव्य लक्षण' द्रव्य सत् स्वरूपी है। 'उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्' सत् उत्पाद व्यय ध्रौव्य से सहित है।

उत्पाद : नवीन पर्याय की उत्पत्ति

व्यय : पूर्व पर्याय का विनाश

ध्रौव्य : पूर्व पर्याय का विनाश व नवीन पर्याय का उत्पाद होने पर भी अपने अनादि स्वभाव को नहीं छोड़ना

उत्पाद : घट पर्याय का	**उत्पाद :** दही पर्याय की उत्पत्ति
व्यय : पिंड पर्याय का	**व्यय :** दूध का विनाश
ध्रौव्य : मिट्टी	**ध्रौव्य :** गोरस दोनों अवस्था में रहा

बुद्धि ऋद्धि

१. अवधिज्ञान बुद्धि ऋद्धि - जिसमें बिना किसी बाह्य आलम्बन के मर्यादापूर्वक रूपी पदार्थों को जानने की शक्ति होती है।

२. मनः पर्ययज्ञान बुद्धि ऋद्धि - जिसमें अवधिज्ञान बुद्धि ऋद्धि की तरह मर्यादापूर्वक दूसरों के मनोगत अर्थ को जानने की शक्ति होती है।

३. केवलज्ञान बुद्धि ऋद्धि - जिसमें समस्त द्रव्य और उनकी अनंत पर्यायों को वर्तमान पर्याय की तरह स्पष्ट जानने की शक्ति होती है।

४. बीज बुद्धि ऋद्धि - एक ही बीज पद को ग्रहण कर उस पद के आश्रय से सम्पूर्ण श्रुत का विचार करने वाली होती है।

५. कोष्ठ बुद्धि ऋद्धि - नाना प्रकार के ग्रन्थों में से विस्तारपूर्वक चिह्न सहित शब्द रूप बीजों को अपनी बुद्धि में ग्रहण कर उन्हें मिश्रण के बिना बुद्धि रूपी कोठे में धारण करने की शक्ति होती है।

६. पदानुसारी बुद्धि ऋद्धि- ग्रन्थ के एक पद को ग्रहण कर संपूर्ण ग्रन्थ को ग्रहण करने वाली ऋद्धि है।

७. संभिन्न श्रोतृत्व बुद्धि ऋद्धि - श्रोतेन्द्रिय के उत्कृष्ट विषय क्षेत्र से संख्यात योजन बाहर स्थित दसों दिशाओं के मनुष्य एवं तिर्यन्चों की वाणी को एक साथ सुनकर प्रत्युत्तर देने वाली बुद्धि होती है।

८. १२. दूर स्पर्शत्व आदि पाँच बुद्धि ऋद्धियाँ- अपनी पृथक्-पृथक् स्पर्शनादि इन्द्रियों के उत्कृष्ट विषय से बाहर संख्यात योजन में स्थित तत्-तत् संबंधी विषयों को जान लेने की क्षमता को प्राप्त होने वाली बुद्धि का होना।

१३. दशपूर्वित्व बुद्धि ऋद्धि- दस पूर्वों का ज्ञान कराने वाली बुद्धि।

१४. चतुर्दश पूर्वित्व बुद्धि ऋद्धि - चौदह पूर्वों का ज्ञान कराने वाली बुद्धि। यह श्रुत पारंगत श्रुत केवलियों के होती है।

१५. अष्टांग महानिमित्त बुद्धि ऋद्धि- नभ, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण चिह्न और स्वप्न इन आठ निमित्तों से त्रिकाल का ज्ञान कराने वाली बुद्धि।

१६. प्रज्ञाश्रमण बुद्धिऋद्धि- अध्ययन के बिना ही चौदह पूर्वों के अर्थ का निरूपण करने वाली बुद्धि।

१७. प्रत्येक बुद्धि ऋद्धि- गुरु के उपदेश के बिना ही संयम-तप में प्रवृत्त कराने वाली बुद्धि।

१८. वादित्व बुद्धि ऋद्धि - वाद के द्वारा इन्द्र के पक्ष को भी निरस्त कराने में समर्थ बुद्धि।

विक्रिया ऋद्धि

सामायिक में तन कब और क्यों हिलता देखो

१. अणु के बराबर सूक्ष्म शरीर बनाने की क्षमता अणिमा विक्रिया ऋद्धि है।

२. मेरु के बराबर बड़ा शरीर बनाने की क्षमता महिमा विक्रिया ऋद्धि है।

३. वायु से भी हल्का शरीर करने की क्षमता लघिमा विक्रिया ऋद्धि है।

४. वज्र से भी भारी शरीर करने की क्षमता गरिमा विक्रिया ऋद्धि है।

५. भूमि पर स्थित रहकर अंगुलि के अग्रभाग से सूर्य-चन्द्रमा, मेरु, शिखर आदि को स्पर्श करने की क्षमता प्राप्ति विक्रिया ऋद्धि है।

६. जल के समान पृथ्वी पर तथा पृथ्वी के समान जल पर गमन करने की क्षमता प्राकाम्य विक्रिया ऋद्धि है।

७. सब जगत् में प्रभुत्व बने, जिससे वह ईशित्व विक्रिया ऋद्धि है।

८. समस्त जीव समूह को वश में करने की क्षमता वशित्व विक्रिया ऋद्धि है।

९. शैल, वृक्षादि के मध्य में होकर आकाश के समान गमन करने की क्षमता अप्रतिघात विक्रिया ऋद्धि है।

१०. एक साथ अनेक रूप 'घोड़ा, गायादि' बनाने की क्षमता कामरूपित्व ऋद्धि है।

११. अदृश्य हो जाने की क्षमता अन्तर्धान विक्रिया ऋद्धि है।

क्रिया ऋद्धि

१. आसन लगाकर बैठे अथवा खड़े हुए भी आकाश में गमन करने की क्षमता नभस्तलगामित्वचारण क्रिया ऋद्धि है।

२. जलकायिक जीवों को बाधा न पहुँचाते हुए इच्छानुसार जल, कुहरा, ओस, बर्फादि में गमन करने की क्षमता जलचारणत्व क्रिया ऋद्धि है।

३. चार अंगुल प्रमाण पृथ्वी को छोड़कर आकाश में घुटनों को मोड़े बिना बहुत योजनों तक गमन करने की क्षमता जंघाचारण क्रिया ऋद्धि है।

४. फल , पत्र तथा पुष्पादि में स्थित जीवों अथवा उनके आश्रित जीवों की विराधना न करते हुए उनके ऊपर पैर रखकर चलने की क्षमता फल पत्र पुष्प चारण क्रिया ऋद्धि है।

५. अग्नि शिखा में स्थित जीवों की विराधना न करके उन पर चलने तथा धुएँ का सहारा ले ऊपर चढ़ने की शक्ति अग्नि धूम चारण क्रिया ऋद्धि है।

६. जलकायिक जीवों को बाधा पहुँचाए बिना मेघ पर तथा बरसती जलधारा पर चलने की क्षमता मेघ चारण क्रिया ऋद्धि है।

७. मकड़ जाल के तंतु अथवा वृक्ष के तन्तुओं पर जीवों को बाधा पहुँचाए बिना चलने व चढ़ने की क्षमता तन्तु चारण क्रिया ऋद्धि है।

८. सूर्य, चन्द्र, तारा, नक्षत्र, ग्रह की किरणों का अवलम्बन ले योजनों तक गमन करने की क्षमता ज्योतिष चारण क्रिया ऋद्धि है।

९. वायु की पंक्ति के सहारे कोशों तक चलने की क्षमता मरुच्चारण क्रिया ऋद्धि है।

तप ऋद्धि

१. दीक्षा उपवास को आदि कर मरण पर्यंत एक-एक उपवास अधिक करने की शक्ति उग्र तप ऋद्धि है। (जैसे- पारणा दो उपवास, पारणा तीन उपवास, पारणा चार उपवास इत्यादि क्रम से बढ़ाते जाना)

२. बहुत उपवास हो जाने के बाद भी शरीर सूर्य की किरणों के समान चमकता रहे ऐसी शक्ति दीप्त तप ऋद्धि है।

३. तपे हुए लोह पर गिरी जल बूँद के समान खाया हुआ अन्नादि सब क्षीण हो जाए अर्थात् मल-मूत्रादि रूप परिणमन न हो, ऐसी शक्ति तप्त तप ऋद्धि है।

४. सभी ऋद्धियों की उत्कृष्टता को प्राप्त करने वाले मंदर पंक्ति, सिंहनिष्क्रीड़ित आदि उपवास करने की क्षमता प्राप्त होना महातप ऋद्धि है।

५. अनशनादि बारह तपों का उग्रता से पालन, हिंसक जंतुओं से भरे जंगल में निवास, अभ्रावकाश आदि योग धारण की क्षमता का प्राप्त होना घोर तप ऋद्धि है।

६. अनुभव एवं वृद्धिगत तप से सहित, तीन लोक के संहार की शक्ति से युक्त, कंटक, शिला, अग्नि आदि बरसाने में समर्थ, समुद्र की जलराशि को सुखा देने में समर्थ घोर पराक्रम तप ऋद्धि है।

७. जिस ऋद्धि के निमित्त से दु:स्वप्न नष्ट हो जाते हैं, अविनश्वर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन हो, मुनि के रहने वाले क्षेत्र में चोरादिक की बाधाएँ, अकाल एवं महायुद्ध आदि न हों, अघोर ब्रह्मचारित्व तप ऋद्धि है।

बल ऋद्धि

१. एक मुहूर्त्त काल के भीतर अन्तर्मुहूर्त में संपूर्ण श्रुत का चिंतन करने की क्षमता मनोबल ऋद्धि है।

२. जिस ऋद्धि के प्रकट होने पर मुनि श्रम रहित अहीन कंठ होता हुआ मुहूर्त मात्र काल के भीतर संपूर्ण श्रुत को जानता व उच्चारण करता है। वह वचन बल ऋद्धि है।

३. जिस ऋद्धि के प्रभाव से चतुर्मासादिक रूप कायोत्सर्ग करते हुए भी श्रम रहितता हो तथा कनिष्ठ अंगुली मात्र से तीन लोक को उठाकर अन्यत्र स्थापित करने की क्षमता हो काय बल ऋद्धि है।

औषधि ऋद्धि

१. जिस ऋद्धि के प्रभाव से ऋषि के हाथ-पैर के स्पर्श मात्र से रोगी का रोग दूर हो जाए आमर्ष औषधि ऋद्धि है।

२. ऋषि के लार, कफ, थूक, आदि में रोग को दूर करने की क्षमता क्ष्वेल औषधि ऋद्धि है।

३. पसीने के आश्रय से शरीर में लिप्त मल जल्ल कहलाता है। उस जल्ल में रोग दूर करने की क्षमता जल्लौषधि ऋद्धि है।

४. जिस शक्ति के निमित्त से जिह्वा, ओंठ, दाँत, कर्ण एवं नासिका का मल रोग दूर करने का कारण बने मल औषधि ऋद्धि है।

५. जिस ऋद्धि से मल-मूत्र, रुधिर आदि रोग दूर करने में कारण बनें वह विप्रुष् औषधि ऋद्धि है।

६. जिस ऋद्धि के बल से मुनि से स्पर्शित जल तथा वायु सर्व रोग को हरने वाली हो सर्वोषधि ऋद्धि है।

७. जिस शक्ति के निमित्त से वचन मात्र द्वारा महाविष से व्याप्त व्यक्ति निर्विष हो जाए अथवा विष युक्त भोजन भी निर्विषता को प्राप्त हो मुखनिर्विष ऋद्धि कहलाती है।

८. रोग व विष से युक्त जीव जिस ऋद्धि के प्रभाव से झट देखने मात्र से ही नीरोगता व निर्विषता को प्राप्त हो जाये दृष्टि निर्विष ऋद्धि कहलाती है।

रस ऋद्धि

१. मर जाओ- ऐसा कहने पर जीव शीघ्र ही मर जाए ऐसी शक्ति आशीर्विष ऋद्धि है।

२. जिस ऋद्धि के बल से रोष युक्त ऋषि से देखा गया जीव, सर्प से काटे गए के समान तुरंत मर जावे वह दृष्टि विष ऋद्धि है।

नोट:- वीतरागी श्रमण ऐसा अपकार कभी नहीं करते। यहाँ केवल तप का प्रभाव बतलाया गया है।

३. ६ :- जिस ऋद्धि के प्रभाव से हाथ में रखा हुआ रूखा-सूखा अन्न भी दुग्ध, मधु, अमृत, तथा घृत रूप परिणाम को प्राप्त हो जावें अथवा जिनके वचनों को सुनकर तिर्यञ्च व मनुष्यों के दु:ख शांत हो जावे, वे क्रमश: क्षीरस्रावि, मधुरस्रावि, अमृतस्रावि एवं सर्पिस्रावि रस ऋद्धियाँ हैं।

अक्षीण ऋद्धि

१. जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनि के आहार के पश्चात् शेष बचे भोजन में, चक्रवर्ती की पूरी सेना भी जीम ले तो भी थोड़ा-सा भोजन कम न पड़े वह अक्षीण महानस ऋद्धि है।

२. जिस ऋद्धि के प्रभाव से समचतुष्कोण चार धनुष प्रमाण क्षेत्र में असंख्यात मनुष्य व तिर्यञ्च बिना किसी व्यवधान के बैठ सकें, वह अक्षीण महालय ऋद्धि है।

जिन्दगी की डायरी में यह बात लिख दीजिए।
कि सफर लम्बा है मुकाम मत कीजिए।।

रास्तों के राहगीरों से रिश्ते हम बनाते नहीं।
साथ तो चलते हैं मगर साथ वो निभाते नहीं।।

रास्ता मिला है तो सफर मंजिल का करो।
रास्ते में पड़े रहना कचड़े की निशानी है।।

गुरु स्तुति

भो आचार्य: श्री विद्यासागर: भक्तित्रय सहितोऽहं,
नमोऽस्तु कुर्वेहं।
बाल ब्रह्मचारिण: परमविरागिन: भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं ..... भो .....।।१।।
अनुपम ज्ञानिन: भेद विज्ञानिन: भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं ..... भो .....।।२।।
रहिताऽडम्बर: महादिगम्बर: भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं ..... भो .....।।३।।
मुनिगण नायक: दुरितविनाशक: भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं ..... भो .....।।४।।
भव्य शरीरिण: महामनीषिण: भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं ..... भो .....।।५।।
धर्मप्रभावक: धर्म प्रबोधक: भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं ..... भो .....।।६।।

पाठ्यक्रम - १९

१९ ब श्रावकों के बारह व्रत

पाँच पापों के एकदेश अर्थात् स्थूल रूप से त्याग को अणुव्रत कहते हैं। अणुव्रत पांच होते हैं- १. अहिंसाणुव्रत, २. सत्याणुव्रत, ३. अचौर्याणुव्रत, ४. ब्रह्मचर्याणुव्रत, ५. परिग्रहपरिमाणाणुव्रत।

१. अहिंसा अणुव्रत - हिंसा के स्थूल त्याग को अहिंसाणुव्रत कहते हैं। यह श्रावक संकल्पपूर्वक मन, वचन, काय से किसी भी प्राणी का घात अपने मनोरंजन एवं स्वार्थपूर्ति के लिए नहीं करता है तथा शेष तीन प्रकार की हिंसा को अपने विवेकपूर्वक कम करता है। आगम कथित मर्यादा के भीतर की ही खाद्य वस्तुओं का, पानी आदि का प्रयोग करता है। सभी प्राणियों को अपने समान मानकर ही व्यवहार करता है।

२. सत्याणुव्रत - झूठ के स्थूल त्याग को सत्याणुव्रत कहते हैं। जिस झूठ से समाज में प्रतिष्ठा न रहे, प्रामाणिकता खण्डित होती हो, लोगों में अविश्वास हो, राजदण्ड का भागी बनना पड़े, इस प्रकार के झूठ को स्थूल झूठ कहते हैं। सत्याणुव्रती ऐसा सत्य भी नहीं बोलता जिससे किसी पर आपत्ति आ जावे।

३. अचौर्य अणुव्रत - स्थूल चोरी का त्याग करने वाला अचौर्य अणुव्रती श्रावक कहलाता है। अचौर्याणुव्रती जल और मिट्टी के सिवा बिना अनुमति के किसी के भी स्वामित्व की वस्तु का उपयोग नहीं करता। लूटना, डाका-डालना, जेब काटना, किसी की धन-सम्पत्ति, जमीन हड़प लेना, गड़ा धन निकाल लेना स्थूल चोरी के उदाहरण हैं। यह श्रावक चोरों की सहायता नहीं करता, चोरी का माल नहीं खरीदता, राजकीय नियमों का उल्लंघन नहीं करता कालाबाजारी एवं मिलावट नहीं करता है।

४. ब्रह्मचर्य अणुव्रत - इसका दूसरा नाम स्वस्त्री संतोष व्रत भी है। अपनी विवाहिता स्त्री के अतिरिक्त शेष स्त्रियों के प्रति माँ, बहन और बेटी का व्यवहार करना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। ब्रह्मचर्याणुव्रती अपने परिवार जन को छोड़कर अन्य जनों के विवाह-व्यवसाय नहीं करता और न कराता है। काम सम्बन्धी कुचेष्टाओं को नहीं करता, चारित्रहीन स्त्री-पुरुषों की संगति नहीं करता।

५. परिग्रह परिमाण व्रत - तीव्र लोभ को मिटाने के लिए परिग्रह की सीमा निर्धारित करना परिग्रह परिणाम व्रत है। धन धान्यादि बाह्य पदार्थों के प्रति ममत्व, मूर्च्छा या आशक्ति को परिग्रह कहते हैं, धन-धान्यादि बाह्य पदार्थों की सीमा बनाकर उसमें संतोष धारण करना परिग्रह परिमाणाणुव्रत है।

यह व्रती श्रावक दूसरों के लाभ में विषाद नहीं करता, लाभ-हानि में संक्लेशित नहीं होता। लोभ के वशीभूत हो नौकर आदि पर अधिक भार नहीं डालता। चूंकि इस व्रत के द्वारा वह अपनी अन्तहीन इच्छाओं को एक सीमा में बांध देता है। अतः इसे इच्छापरिमाण व्रत भी कहते हैं।

० जिससे अणुव्रतों में विकास होता है उन्हें **गुण-व्रत** कहते हैं, गुणव्रत तीन हैं - १. दिग्व्रत, २. देशव्रत तथा ३. अनर्थदण्ड त्याग व्रत।

६. दिग्व्रत - जीवन पर्यन्त के लिए दशों दिशाओं में आने-जाने की मर्यादा बना लेना दिग्व्रत है। जैसे कि मैं व्यापार आदि के निमित्त अमुक दिशा में वहाँ जाऊँगा उससे आगे नहीं।

७. देशव्रत- दिग्व्रत में ली गई जीवन भर की मर्यादा के भीतर भी अपनी आवश्यकताओं एवं प्रयोजन के अनुसार आवागमन को सीमित समय के लिए नियन्त्रित रखना देशव्रत है। जैसे कि एक माह तक इस नगर से, मोहल्ले से बाहर नहीं जाऊँगा। अथवा आज मैं घर से बाहर नहीं जाऊँगा इत्यादि।

८. अनर्थदण्ड त्याग व्रत - बिना प्रयोजन पाप के कार्य करने को अनर्थदण्ड कहते हैं। इनका त्याग करना अनर्थदण्ड त्याग व्रत है। यह व्रती खोटे व्यापार का उपदेश नहीं देता, अस्त्र शस्त्रादि, हिंसक उपकरणों का आदान-प्रदान नहीं करता, किसी ही हार, जीत, लाभ-हानि की व्यर्थ चिन्ता नहीं करता बिना मतलब पृथ्वी आदि नहीं खोदता, अप्रयोजनीय स्थावर जीवों की हिंसा नहीं करता, मन को विकृत करने वाले साहित्य, गीत, नाटक आदि कार्यक्रमों को न पढ़ता न सुनता और न देखता है तथा आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह भी नहीं करता है।

० शिक्षा व्रत – जिनसे मुनि बनने की शिक्षा / प्रेरणा मिले उन्हें शिक्षा व्रत कहते है वे चार हैं। १. सामायिक , २. प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण तथा ३. अतिथि संविभाग।

९. सामायिक – समय आत्मा को कहते हैं आत्मा के गुणों का चिन्तन कर समता का अभ्यास करना सामायिक है। सामायिक में संसार, शरीर, भोगों के स्वरूप का चिन्तन, बारह भावनाओं का चिन्तन, चैत्य-चैत्यालयों की वन्दना, भक्ति आदि का पाठ तथा णमोकार मंत्र का जाप भी किया जा सकता है। प्रतिदिन दोनों संध्याओं में कम से कम २४ मिनट तक इसका अभ्यास करना चाहिए।

१०. प्रोषधोपवास – अष्टमी चतुर्दशी पर्व के दिनों में एकासन पूर्वक उपवास करना प्रोषधोपवास है। शरीर की शक्ति के अनुसार उत्तम, मध्यम एवं जघन्य विधी से इसको धारण करना चाहिए। उपवास के दिन घर-गृहस्थी और व्यवसाय-धन्धे के समस्त कामों को छोड़कर धर्मध्यान पूर्वक दिन बिताना चाहिए।

११. भोगोपभोग परिमाण – भोग और उपभोग के साधनों का कुछ समय या जीवन पर्यन्त के लिए त्याग करना भोगोपभोग परिमाण व्रत कहलाता है। इससे गृहस्थ अनावश्यक संग्रह, खर्च और आकुलता से बच जाता है।

१२. अतिथि संविभाग – जो संयम का पालन करते हुए देश-देशान्तर में भ्रमण करते हैं, उन्हें अतिथि कहते हैं। ऐसे अतिथियों को अपने लिए बनाए गए भोजन में से विभाग करके भोजन देना अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है।

''सत्ता शाश्वत होती है, बेटा!
प्रति-सत्ता में होती हैं
अनगिन सम्भावनाएँ
उत्थान-पतन की,
खसखस का दाना-सा
बहुत छोटा होता है
बड़ का बीज वह!
समुचित क्षेत्र में उसका वपन हो
समयोचित खाद, हवा, जल
उसे मिलें
अंकुरित हो, कुछ ही दिनों में
विशाल काय धारण कर
वट के रूप में अवतार लेता है।
यही इसकी महत्ता है।
सत्ता शाश्वत होती है
सत्ता भास्वत होती है बेटा!
रहस्य में पड़ी इस गन्ध का
अनुमान करना होगा
आस्था की नासा से सर्वप्रथम
समझी बात...!''

धीरे-धीरे चलो

धीरे-धीरे चलो जी मंदिर, भगवन के गुण गाने को।
बढ़ते चलो हजारों लोगों, वीतरागता पाने को।।

घर से मेरे भाव बने मैं, मंदिर जी में जाऊँगा।
पार्श्वप्रभु के दर्शन करके, मन ही मन हर्षाऊँगा।।
चेतनता के दर्शन करता, भव में पुण्य कमाने को।

भक्ति भाव से दर्शन करके, कूप से जल भर लाऊँगा।
दोनों हाथ में कलश को लेकर, भगवन को नहलाऊँगा।।
ऐसा भव्य जीव ही करते, पाप अनंत मिटाने को।।

थाल में अष्ट द्रव्य को लेकर, पूजन विधि को रचाऊँगा।
देवशास्त्रगुरु पूजन करके, भव-भव में सुख पाऊँगा।।
गुरु की प्रतिदिन पूजा करता, रत्नत्रय को पाने को।।

हे प्रभु आप तो केवलज्ञानी, तीन लोक विजेता हो।
हे प्रभु आप तो सिद्ध स्वरूपम्, मुक्तिपथ के नेता हो।।
राह सही मुझको बतला दो, मंजिल अपनी पाने को।।

सफलता के लिए मिलकर, सभी को काम करना है।
हमें आकाश से ऊँचा, पाठशाला का नाम करना है।।

- उत्तरदायित्व से महान बल प्राप्त होता है। जहाँ कहीं भी उत्तरदायित्व होता है वहीं विकास होता है।
- हताश न होना ही सफलता का मूल है।
- उद्यम स्वर्ग है आलस्य नरक।
- संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं।
- अध्ययन आनन्द का अलंकरण और योग्यता का काम करता है।
- अभागा वह है जो संसार में सबसे पवित्र धर्म कृतज्ञता को भूल जाता है।

छंद

तीसरी ढाल (नरेन्द्र/जोगीरासा)

आतम को हित है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिव माँहिं न तातैं, शिवमग लाग्यौ चहिये॥
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव-मग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो॥१॥
परद्रव्यन तैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आपरूप को जानपनो सो, सम्यग्ज्ञान कला है॥
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक् चारित सोई।
अब व्यवहार मोक्ष-मग सुनिये, हेतु नियत को होई॥२॥
जीव-अजीव तत्त्व अरु आस्त्रव, बन्ध रु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिन को, ज्यों का त्यों सरधानो॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुन सामान्य-विशेषैं, दृढ़ प्रतीति उर आनो॥३॥
बहिरातम अन्तर-आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह-जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुधउपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी॥४॥
मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टि, तीनों शिव-मगचारी॥
सकल-निकल परमातम द्वैविध, तिन में घाति निवारी।
श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी॥५॥
ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर-आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै॥६॥
चेतनता बिन सो अजीव हैं, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस गन्ध दो, फरस वसु जाके हैं॥
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनुरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी॥७॥
सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निशि-दिन सो, व्यवहार काल परिमानो॥
यों अजीव अब आस्त्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा॥८॥
ये ही आतम के दुःख कारण, तातैं इनको तजिए।
जीव प्रदेश बँधे-विधि सौं, सो बन्धन कबहुँ न सजिये॥
शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप-बल तैं विधि झरन निर्जरा , ताहि सदा आचरिये॥९॥
सकल कर्म तैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
इहि विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी॥
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
येहु मान समकित को कारण, अष्ट अंगजुत धारो॥१०॥
वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो॥
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, अब संक्षेप हु कहिये।
बिन जाने तैं दोष-गुनन को, कैसे तजिये-गहिये॥११॥
जिन-वच में शंका न धारि वृष, भव-सुख-वांछा भानै।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावैं, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै॥
निज-गुण अरु पर-औगुण ढांकै, वा निज धर्म बढ़ावैं।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निजपर को सु दिढ़ावैं॥१२॥
धर्मी सों गौ-वच्छ प्रीति सम, कर जिन-धर्म दिपावैं।
इन गुन तैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावैं॥
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय तो न मद ठानै।
मद न रूप को, मद न ज्ञान को, धनबल को मद भानै॥१३॥
तप को मद न मद जु प्रभुता को, करै न सो निज जानै।
मद धारै तो यहि दोष वसु, समकित को मल ठानै॥
कुगुरु कुदेव कुवृष सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै हैं।
जिनमुनि जिनश्रुत बिन कुगुरुरादिक तिन्हैं न नमन करै हैं॥१४॥
दोष-रहित गुण-सहित सुधी जे, सम्यग्दर्श सजे हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजे हैं॥
गेही पै, गृह में न रचे ज्यों, जल तैं भिन्न कमल है।
नगर-नारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है॥१५॥
प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षँढ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नाहिं, उपजत समकित धारी॥
तीन लोक तिहूँ काल माँहिं नहिं, दर्शन सम सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुःखकारी॥१६॥
मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान-चरित्रा।
सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारौ भव्य पवित्रा॥
दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै॥१७॥

● न्याय से एक घर में भले ही दीपक प्रज्वलित हो, दूसरे घर में अंधेरा होने की संभावना रहती है। मात्र समझौते से सभी घरों में दीपक प्रकाशित होते हैं, हृदय में खुशियों की बहार आती है।

● जमीन में दफनाए हुए मुर्दे को उखाड़ने पर सिर्फ हड्डियों के दर्शन और दुर्गंध का ही अनुभव होता है, ठीक उसी प्रकार बीते हुए कटुकाल को बार-बार याद करते रहने से क्रोध की दुर्गंध, दुर्भावना का माँस और असमाधि की वेदना का ही अनुभव होता है।

● 'मैं ही हमेशा सही हूँ', ऐसे अहंकार भरे विचार को मन से हटाकर 'मैं सब की नजर में अच्छा बनना चाहता हूँ' इस विचार को मन के केन्द्र में विराजमान कर दो।

सुकुमाल मुनि

करोड़ों की धन-सम्पदा, बंगला, गाड़ी, नौकर-चाकर होते हुए भी सेठानी यशोभद्रा उदास एवं दुखी रहती थीं। कारण उनकी कोई संतान नहीं थी। बिना दीपक के मकान में अंधकार के समान ही उसके मन में अंधकार छाया रहता था। उसे खबर थी कि एक अवधिज्ञानी मुनिराज नगर के बाहर उपवन में पधारे हैं। अतः वह उनके दर्शन हेतु वहाँ गई एवं उसने मुनिराज से पूछा-हे प्रभु! मेरे संतान का सुयोग बनेगा या नहीं। तब मुनिराज बोले-तेरा पुत्र सुयोग होगा। वह अत्यन्त सुन्दर, धर्मात्मा और पापभीरु होगा। किन्तु पुत्र के जन्म की खबर सुनते ही पिता मुनिदीक्षा अंगीकार कर लेगा तथा तेरा पुत्र भी मुनि दर्शन कर अथवा उनके वचन सुनते ही घरवार त्याग कर दीक्षा धारण करेगा। यह बात सुनते ही रानी हर्ष और विषाद दोनों से युक्त हो गई।

कुछ ही दिनों में उसने गर्भ धारण किया तथा पति से इस बात को छुपाए रखा कि कहीं सुनते ही वे दीक्षा न ले लें। पुत्र जन्म के बाद एक दिन सेठ जी की कोठी के निकट तालाब में दासी को बालक के कपड़े धोते हुए देख एक ब्राह्मण ने सोचा सेठ जी के यहाँ पुत्र हुआ है अतः कुछ याचना करनी चाहिए। अतः उसने सेठ जी से निवेदन किया कि आपके आँगन में पुत्र उत्पन्न हुआ है अतः आप कुछ दान-दक्षिणा दें। तब सेठ को ज्ञात हुआ तब उसने पुत्र का मुख देखकर मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली।

पति के वैराग्य से दुःखी सेठानी पुत्र का बड़े लाड़-प्यार से पालन-पोषण करने लगी एवं पुत्र के लिए स्वर्णमयी एक सर्वतोभद्र महल तैयार करवाया उसके चारों ओर बत्तीस महल तैयार करवाए तथा सुकुमाल को किसी भी प्रकार का कष्ट न हो ऐसी सभी व्यवस्थाएँ महल के भीतर ही की गईं थीं। सुकुमाल के युवा होने पर नगर में सुन्दर-सुन्दर कन्याओं से उसका विवाह कर दिया गया।

एक दिवस एक व्यापारी रत्न कम्बल विक्रय के उद्देश्य से नगर राजा के पास पहुँचा। राजा ने अच्छा मूल्य सुन अपनी-अपनी असमर्थता व्यक्त की तब वह व्यापारी यशोभद्रा सेठानी के महल में पहुँचा। उसने वह कम्बल अपने सुकुमाल के लिए खरीद लिया। सुकुमाल को वह कम्बल चुभता था अर्थात् कठोर लगा। अतः यशोभद्रा ने उस कम्बल के छोटे-छोटे टुकड़े करवाकर अपनी बहुओं के लिए जूतियाँ बनवा दीं।

एक बार छत पर रखी जूती को कौवे ने खाद्य सामग्री समझकर मुँह में दबा लिया और उड़ता हुआ राजमहल के छत पर छोड़ दिया। राजा ने छत पर पड़ी जूती देखी तो वह उस पर लगे रत्न कम्बल को पहचान कर विचार करने लगा। यह जूती कहाँ से आयी, पूछने पर पता चला यह जूती सुकुमाल की स्त्री की है। तब राजा को यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ, उसे सुकुमाल से मिलने की इच्छा हुई और वह स्वयं सुकुमाल के घर की ओर चल पड़ा। यशोभद्रा को राजा के आगमन की सूचना मिलते ही वह उनके स्वागत हेतु तैयार हुई। माँ-बेटे दोनों ने अतिशय सत्कार किया। राजा के लिए स्वर्णमयी सिंहासन लगाया गया। प्रीतिवश उसने सुकुमाल को भी अपने साथ बिठा लिया। फिर राजा से निवेदन किया कि आप आज हमारे यहाँ ही भोजन करके जाएँ।

राजा की स्वीकृति मिली और राजा और सुकुमाल भोजन करने बैठे। इस मुलाकात में सुकुमाल की भिन्न-भिन्न चेष्टाएँ देखकर राजा ने उसकी माँ से कहा - लगता है सुकुमाल को कुछ व्याधि है। माँ ने पूछा - ऐसा आपने कैसे जाना? राजा बोला- सिंहासन पर बैठते समय स्थिर न बैठकर ये हिलडुल रहे थे, दूसरा जब आपने आरती की थी इसकी आँखों से अश्रु गिरने लगे थे तथा जब आपने खीर परोसी तो यह एक-एक चावल बीनकर खा रहा था इसलिए ऐसा प्रतीत हुआ। सेठानी मुस्कराई और बोली - राजाजी बात ऐसी है कि मेरा पुत्र अत्यन्त कोमल दिव्य गादी पर सोता एवं बैठता है। आज हमने मंगल स्वरूप जो सरसों के दाने डाले थे वे इसे चुभ रहे थे। इसकी कठोरता से इसका आसन चलायमान हो रहा था। आँखों से पानी आने का कारण यह है कि यह हमेशा रत्न दीपक के प्रकाश में ही रहता है प्रथम बार ही घी का दीपक इसके समक्ष आया था अतः उसकी लौ से उत्पन्न ताप को सहन न कर सका। तीसरी बात यह है कि प्रतिदिन कमल बंद होने के पूर्व ही चावलों को कमलों के बीच रख दिया जाता था। उसकी गर्मी से पके हुए चावलों को प्रातःकाल निकालकर उससे बनी खीर इसे खिलाई जाती थी।

आज आपके आने की सूचना मिलते ही उस खीर में कुछ सामान्य चावल मिला दिये गए सो यह बालक उन खीर के दानों को बीन-बीन कर खा रहा था। अतः राजन् आप जिसे कोई बीमारी समझ रहे हैं यह कोई

बीमारी नहीं है। राजा इन सब बातों को सुन बड़ा भारी आश्चर्य को प्राप्त हुआ। तब उसने राजकुमार का नाम अवन्ती सुकुमाल रखा और आनंदपूर्वक राजमहल की ओर चला गया।

एक दिन सुकुमाल के मामा यशोभद्र मुनि ने अवधिज्ञान से जान लिया कि सुकुमाल की आयु बहुत थोड़ी बची है। अतः उसे संयम पथ पर चलने का उपदेश देना चाहिए। किन्तु पहुँचे कैसे सेठानी ने मोह के कारण मुनि दर्शन से रोकने हेतु पूर्ण व्यवस्था जो कर रखी है। फिर भी कुछ उपाय अवश्य करना चाहिए। ऐसा विचार कर चतुर्मास स्थापना के दिवस ही सेठानी के नगर के निकट बने चैत्यालय में रुक गए। जब सेठानी को मुनि आगमन की खबर लगी तो वह शीघ्र ही मंदिर पहुँची एवं मुनिराज से विहार का निवेदन किया।

तब मुनिराज बोले - आज तो स्थापना दिवस है आगे समय शेष नहीं है अतः मैं यहीं चतुर्मास स्थापना करूँगा। ऐसा कहकर वहीं प्रतिमायोग धारण कर बैठ गये। चतुर्मास पूर्ण होने पर सुकुमाल की आयु तीन दिन शेष जानकर उन्होंने 'तीन लोक प्रज्ञप्ति' का पाठ किया जिसमें स्वर्ग लोक का वर्णन सुन सुकुमाल को जातिस्मरण हो आया और उसने आत्मकल्याण हेतु संयम मग्न होने का मन बनाया तथा पत्नियों की साड़ियों की गाँठ बाँधकर उसकी रस्सी बनाकर नीचे उतरकर सीधे मुनिराज के पास पहुँचा। दीक्षा का निवेदन किया। तब मुनिराज बोले-तुमने ठीक ही विचार किया क्योंकि अब तुम्हारी आयु तीन दिन की शेष है। अतः दीक्षा लेकर घोर एकान्त वन में ध्यान लगाने हेतु गए।

वहीं पर उनकी पूर्व भव की भाभी, जो सियालनी बनी थी, पूर्व बैर का स्मरण आने पर उनका पैरों से भक्षण करने लगी। तब शरीर की अशुचिता और क्षणभंगुरता का ध्यान कर सुकुमाल मुनि आत्म ध्यान में लीन रहे और अंत में शरीर त्याग कर सर्वार्थसिद्धि विमान में जन्म लिया।

।। सूर्योदय दोहावली ।।

सीधे सीझे शीत हैं, शरीर बिन जीवन्त।
सिद्धों को मम नमन हो, सिद्ध बनूँ श्रीमन्त॥ 1॥
वचन-सिद्धि हो नियम से, वचन-शुद्धि पल जाए।
ऋद्धि-सिद्धि-परसिद्धियाँ, अनायास फल जाएँ॥ 2॥
प्रभु दिखते तब और ना, और समय संसार।
रवि दिखता तो एक ही, चन्द्र साथ परिवार॥ 3॥
भांति-भांति की भ्रांतियाँ, तरह-तरह की चाल।
नाना नारद-नीतियाँ ले जातीं पाताल॥ 4॥
मानी में क्षमता कहाँ, मिला सकें गुणमेल।
पानी में क्षमता कहाँ, मिला सके घृत तेल॥ 5॥
स्वर्गों में ना भेजते, पटके ना पाताल।
हम तुम सबको जानते, प्रभु तो जाननहार॥ 6॥
चमक-दमक की ओर तू, मत जा नयना मान।
दुर्लभ जिनवर रूप का, निशि-दिन करना पान॥ 7॥
चिन्तन से चिन्ता मिटे, मिटे मनो मल मार।
प्रसाद मानस में भरे, उभरें भले विचार॥ 8॥
रही सम्पदा आपदा, प्रभु से हमें बचाय।
रही आपदा सम्पदा, प्रभु में हमें रचाय॥ 9॥
कटुक मधुर गुरु वचन भी, भविक चित्त हुलसाय।
तरुण अरुण की किरण भी, सहज कमल विकसाय॥10॥
वेग बढ़े इस बुद्धि में, नहीं बढ़े आवेग।
कष्ट-दायिनी बुद्धि है, जिसमें ना संवेग॥ 11॥
शास्त्र पठन ना, गुणन से निज में हम खो जाय।
कटि पर ना, पर अंक में, माँ के शिशु सो जाय॥ 12॥
सुधी पहनता वस्त्र को, दोष छुपाने भ्रात।
किन्तु पहिन यदि मद करे, लज्जा की है बात॥ 13॥
आगम का संगम हुआ, महापुण्य का योग।
आगम हृदयंगम तभी, निश्छल हो उपयोग॥ 14॥
विवेक हो ये एक से, जीते जीव अनेक।
अनेक दीपक जल रहे, प्रकाश देखो एक॥ 15॥
खण्डन-मण्डन में लगा, निज का ना ले स्वाद।
फूल महकता नीम का, किन्तु कटुक हो स्वाद॥ 16॥
नीर-नीर को छोड़कर, क्षीर- क्षीर का पान।
हंसा करता भविक भी, गुण लेता गुणगान॥ 17॥
चिन्तन मन्थन मनन जो, आगम के अनुसार।
तथा निरन्तर मौन भी, समता बिन निस्सार॥ 18॥
पके पत्र फल डाल पर टिक ना सकते देर।
मुमुक्षु क्यों ? ना निकलता, घर से देर सबेर॥ 19॥
तव-मम, तव-मम कब मिटे, तरतमता का नाश।
अन्धकार गहरा रहा सूर्योदय ना पास॥ 20॥